P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6 * ISSUE-5 * (Part-1) January- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

संस्कृत वाङ्मय में गुणवत्तापूर्ण जीवन के विविध आयाम

चन्द्र किशोर
असिस्टेंट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
ब्रह्मावर्त पी0 जी0 कॉलेज,
मन्धना, कानपुर, उ0 प्र0,
भारत

सारांश

संस्कृत साहित्य विद्या एवं विविध भाषाओं की जननी के रूप में सम्पूर्ण धरा पर अभिहित है। ज्ञान के आदि स्रोत के रूप में 'वेद' जिन्हें अपौरूषेय माना जाता है, संस्कृत साहित्य में अमूल्य धराहर के रूप में दुनिया के पास एक निधि है। वेद स्वयं में सम्पूर्ण मानवता के श्रेष्ठतम आधार संहिता एवं दिव्यतापूर्ण जीवन की शिक्षाओं से भरा है। स्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य का आदि ग्रंथ अर्थात् वैदिक साहित्य ही मनुष्य के गुणवत्तापूर्ण जीवन को समर्पित है। क्योंकि इष्टप्राप्ति तथा अनिष्ट परिहार के अलौकिक उपाय को बतलाने वाले ग्रंथ वेद ही है–''इष्टप्राप्त्यानिष्ट–परिहारयोरलौकिकमुपायं वेदयति स वेदः।''

इस प्रकार से संस्कृत साहित्य का परमसाध्य मानव जाति का कल्याण ही रहा है। यज्ञ के निकट निवास करने वाले ब्रह्मर्षियों एवं मनीषियों के अनुभूत ज्ञान एवं पारस्परिक वार्तालाप से जिस ज्ञान के वेल की शुरूआत हुई वह गुरूकुल पद्धति से होती हुई नालन्दा और तक्षशिला के रूप में विकसित होकर पूरी दुनिया में विद्या के समृद्ध केन्द्र के रूप में भारत में उस विशाल विरासत का संदेश देने में सफल रहते हुए भारत का गौरवीयकरण किया है।

मुख्य शब्द : गुणवत्तापूर्णजीवन, इष्टप्राप्त्यानिष्टपरिहार, अलौकिक उपाय।

प्रस्तावना

आज का समाज भौतिक वाद की तरफ प्रवृत्त हो गया है। येन–केन–प्रकारेण जिस किसी भी प्रकार से भौतिक खुशियाँ अर्जित करना चाहता है जिसके परिणामस्वरूप त्रिविधि तापों अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, तापों से ग्रसित होकर कष्टों को भोग रहा है। संस्कृत वाङ्मय में इन त्रिविध तापों के निवारण का उपाय बतलाया गया है जिनके माध्यम से मनुष्य अपना तथा समाज का उत्थान कर सकता है क्योंकि संस्कृत साहित्य की विषय परिधि में आने वाले शास्त्रों, ग्रंथों, कृतियों, स्मृतियों एवं रचनाओं का सारतः साध्य मानवजाति का उत्थान एवं कल्याण ही रहा है। यद्यपि दृष्टिकोण विविध है तथापि लक्ष्य मानव जाति का उद्धार ही रहा है, जो मोक्ष, मुक्ति, कैवल्य, निर्वाण जैस शबदों से अभिज्ञात है।

अध्ययन का उद्देश्य

''मानव जाति का उत्थान एवं कल्याण।''

साहित्यावलोकन

'संस्कृत साहित्य का विशद इतिहास'– डॉ0 पुष्पा गुप्ता, रीडर लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रकाशकः ईस्टर्नबुक लिंकर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण–**1994** ई0, **ISBN:81-85133-92-1** द्वारा संदर्भित ग्रंथ वेद, पुराण, ब्राह्मणग्रंथ, अरण्यक, उपनिषद् तथा दर्शन।

इष्टप्राप्ति तथा अनिष्टानिवारण का अलौकिक उपाय

इष्टप्राप्ति तथा अनिष्टनिवारण का अलौकिक उपाय बतलाने वाले वेद ही हैं–''इष्टप्राप्त्यानिष्टपरिहारयारलौकिकभुवायं वेदयति स वेदः।'' अतः वेदों के द्वारा धर्म आदि पुरूषार्थ जाने तथा प्राप्त किये जाते हैं। अतएव वेद ही वे अक्षयकोष है, जिनमें सभी विषयों का समावेश है। मनुस्मृति में कहा गया है कि–''वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।'' अर्थात् वेद ही सभी धर्मों के मूल है। वेद परमात्मा के निःश्वास माने गये हैं – ''यस्य निःश्वासितं वेदः।'' सृष्टि की उत्पत्ति के समय ही धार्मिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान के लिए इनका प्रादुर्भाव हुआ। वस्तुतः ये मानव जाति के प्राचीनतम ग्रंथ हैं। धर्म के तो वेद स्तम्भ हैं। आज भी समस्त भारत में सर्वत्र सभी धार्मिक कार्यों में वेद मंत्रों का ही उच्चारण किया

जाता है। भारतीय दर्शन के बीज भी वेद में ही प्राप्त होते हैं। अतः सभी प्रकार का ज्ञान–विज्ञान वेदों में ही निहित है– ''सर्वज्ञानमयो सः।'' वेद ही उचित–अनुचित के निदर्शक, कर्तव्य के अवबोधक, सुख शान्ति के साधक, ज्ञान लोक के प्रचारक तथा निराशा के विनाशक हैं।

वस्तुतः वेद ही सभी भारतीयों को एक सूत्र में बाँधते हैं। वे ही भारतीयों के प्रकाश स्तम्भ तथा भारतीय परम्परा में उन्हें 'शब्द प्रमाण' के रूप में स्वीकार किया गया है। मेधावी विलक्षण, ज्ञानतत्व दृष्टि वाल एवं तपः–पूत योगियों एवं ऋषियों की साधना का फल ही वेद हैं। इसी कारण कहा गया है कि एक शब्द का ही सम्यक् ज्ञान और सम्यक् प्रयोग मृत्युलोक तथा परलोक दोनों में ही कामधेनु के समान होता है–

''एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सु–प्रयुक्तः स्वर्गे मर्त्ये च
कामधुग् भवति।''

कालक्रमानुसार शनैः शनैः समाज भौतिकवाद की तरफ प्रवृत्त होने लगा आर्यों ने वैदिक मंत्रों की शक्ति को पहचाना और देखा कि मंत्र पारलौकिक सुख की प्राप्ति के साथ–साथ इह लौकिक सुख की प्राप्ति भी करवाने में पूर्णरूप से सक्षम हैं। वेदों के बाद ब्राह्मणग्रंथों का स्थान आता है। ऐसा प्रतीत होता है कि समाज में आधिपत्य बनाये रखने और स्वार्थपूर्ति के लिए वर्णव्यवस्था को दृढ़ बना दिया गया।

वैदिक साहित्य में ब्राह्मण ग्रंथों के बाद अरण्यकों का स्थान आता है। सम्भवतः जब मनुष्य सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त होकर नगर व ग्राम के कोलाहलों से दूर शान्त व एकान्त स्थान पर एकग्रचित व तन्मय होकर चिन्तन करता था, जिसके लिए अरण्य ही सबसे उपयुक्त स्थान था। यज्ञ के रहस्यवाद का विवेचन करने के कारण ये ग्रंथ एक परिवर्तनशील युग का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीय संस्कृति का आध्यात्मिकता को ओर प्रवृत्त करवाने का श्रेय इन्हीं ग्रन्थों को प्राप्त है।

वैदिक साहित्य का अन्तिम सोपान उपनिषद् है। वास्तव में उपनिषद सन्यास आश्रम के ग्रंथ हैं। समस्त सांसारिक भोगों को भोगकर जब मनुष्य संन्यास आश्रम में पदार्पण करता है, तब वह उस ज्ञान की प्राप्ति करना चाहता ह जिससे वह सुख–दुःख, राग–द्वेष, मद–मोह, काम–क्रोध आदि से मुक्त हो जाये। इस ज्ञान प्राप्ति के साधन उपनिषद् हैं। इनमें स्पष्ट रूप से शरीर की नश्वरता तथा आत्मा की अजरता और अमरता के विषय में बतलाया गया है। इस संसार में नानात्व नहीं है – ''नेह नानास्ति किञ्चन्।'' क्योंकि एक ही आत्मतत्व सबमें व्याप्त है। पार्थिव शरीर के नष्ट हो जाने पर व्यष्टि रूप अत्मा अपने समष्टि रूप परमात्मा में मिल जाती है, अन्यथा पुनर्जन्म के कर्मों के अनुसार नया शरीर धारण कर लेती है। मनुष्य यह ज्ञान तभी प्राप्त कर सकता है, जब उसने स्वयं विषयभोगों का भोगकर उसकी निस्सारता तथा निरर्थकता का अनुभव कर लिया हो अन्यथा उसकी लालसा व आसक्ति उनके प्रति बनी ही रहती है।

इसी कारण भारतीय संस्कृति में मनुष्य के लिए पहले गृहस्थ आश्रम में रहकर विषयभोगों को जीभरकर भोगने का विधान है और तत्पश्चात् अन्त में संन्यास आश्रम विहित है। इसी तथ्य को देखते हुए उपनिषदों ने स्वयं दो विधाओं का वर्णन किया है – 'परा तथा अपरा'–''द्वे विधे वेदितव्ये इति हस्य यद् ब्रह्मविदोवदन्ति परा चैवापरा च।'' पराविद्या में 'उपनिषद्' तथा अपराविद्या में 'वेद–वेदाङ्ग' हैं, यही दो विद्यायें कठोपनिषद् में 'श्रेयस और प्रेयस', ईशोपनिषद् में 'सम्भूति और असम्भूति' यही विद्या–अविद्या के नाम से भी जानी जाती है। इस प्रकार उपनषिद् मनुष्य के उत्तर पक्ष से सम्बन्धित होने पर भी पूर्वपक्ष से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते ही नहीं वरन् उसके पूरक भी हैं।

इस प्रकार वैदिक संहितायें, ब्राह्मण ग्रंथ, अरण्यक और उपनिषद् एक ही श्रृंखला के अंग हैं। ये परस्पर विरोधी नहीं, प्रत्युत एक–दूसरे के पूरक हैं। दूसरे दृष्टिकोण से देखें तो भारतीय संस्कृति की आधारशिला आश्रम–व्यवस्था है। ब्रह्मचर्य आश्रम में शिष्य गुरूकुल में रहकर वेदों का अध्ययन करता था, फिर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर ब्राह्मण ग्रंथों में प्रतिपादित 'यज्ञ' विधि–विधान सहित करता था एवं धर्मोपार्जन करता हुआ पारिवारिक दायित्वों को निभाता था। वानप्रस्थाश्रम में अरण्य में रहते हुए अरण्यक ग्रंथो का अध्ययन करता था। अन्त में सन्यास आश्रम में एकाग्रचित हो मोक्ष प्राप्त करवाने वाले उपनिषदों का ज्ञान प्राप्त करता था।

ऋग्वेद में कर्तव्य–अकर्तव्य के प्रति शिक्षात्मक उपदेश देते हुए कहा गया है कि परिश्रम द्वारा अर्जित धन से मनुष्य को वास्तविक सुख व आनन्द की प्राप्ति होती है।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्य वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्रजाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्थः ।। ...
.(1)

ऋग्वेद में यह भी स्पष्ट कहा गया है कि मृत्यु के समय मनुष्य का भौतिक शरीर तो अग्नि में जलकर भस्म हो जाता है परन्तु परलोक में जाकर उसे एक और तेजस्वी शरीर प्राप्त होता है –

''हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि संगच्छस्व तन्वा सुवर्चाः''।।
....(2)

वैदिक साहित्य में सुक्रत अथवा शुभ कर्मों की अत्यधिक प्रशंसा और दुष्कर्मों की निन्दा की गई है। शुभ कर्म वाले ही मधुरस का भक्षण करते हैं – ''सुक्रत्तमाः मधुनो भक्षमाशत्।'' जबकि इसके विपरीत दुष्क्रत व्यक्ति ऋत् के मार्ग को पार नहीं कर सकते – 'कृतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्टकृतः।'

''संस्कृति एवं सभ्यता''

ऋग्वेद में अरण्यक संवाद रूप में प्राप्त होते हैं। इन सूक्तों में कथोप–कथन की प्रधानता है, अतः इन्हें संवाद सूक्त कहा जाता है। इन आख्यानों में गूढ़, नैतिक, दार्शनिक व आध्यात्मिक तथ्यों को संवाद के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। पुरूरवा–उर्वशी, यम–यमी, सोम–सूर्या, सरमा,पणि आदि आख्यान ऋग्वेद में सूक्त रूप में मिलते हैं। इन सूक्तों का महत्व इस बात से और भी बढ़ जाता है कि इन सूक्तों/आख्यानों में तत्कालीन

समाज के रीति–रिवाज परम्पराओं एवं विवाह सम्बन्धी मान्यताओं का स्पष्ट वर्णन मिलता है।

ऋग्वेद में एक स्थान पर विश्वदेव से प्रार्थना की गई है कि वे वर और वधू दोनों के ह्रदयों को परस्पर समासक्त कर सभी क्लेशों से रहित कर दें। मातरिश्वा उनकी मति को एक–दूसरे के अनुकूल बनाए तथा उनके बन्धन को दृढ रखे –

समञजन्तु विश्वे देवाः समापो ह्रदयानि नौ।
सम्मातरिश्वा सन्धाता समुद्रेष्ट्री दधातु नौ।।
......(3)

इसी प्रकार ऋग्वेद के तमाम सूक्त ऐसे भी है जो तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और नैतिक अवस्था पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। अतः प्राचीनतम भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को जानने के लिए ऋग्वेद ही महत्वपूर्ण कृति है। वर्णव्यवस्था भारतीय संस्कृति की विशिष्ट विशेषता रही है। वर्णव्यवस्था का प्रथम उल्लेख ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में आता है –

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरूतदस्य यद्वैश्यः पादभ्यांशूद्रोऽजायत्।। ......(4)

वैदिक युग में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। विवाह के विषय में वर–वधू को पूर्ण स्वतंत्रता थी। इस बात का कहीं भी संकेत नहीं है कि माता–पिता की अनुमति या स्वीकृति आवश्यक थी। यद्यपि पत्नी अपने पति के अधीन रहती थी तथापि घर की स्वामिनी थी –

''साम्राज्ञी श्वसुरे भव साम्राज्ञी श्वश्रुवां भव।
ननान्दरि साम्राज्ञी भव साम्राज्ञी अधिदेवृषु।।
....(5)

गुणवत्तापूर्णजीवन के लिए संगीत एक अतिविशिष्ट सोपान है, जिसका मूल उद्गम स्रोत 'सामवेद' है। जिससे गन्धर्ववेद की उत्पत्ति हुई और सोलह हजार रागनियों का निर्माण हुआ। संस्कृत साहित्य में जितने ललित कला विषयक ग्रंथों की रचना बाद में हुई, सभी का स्रोत यही राग–रागनियाँ हैं। इस प्रकार संगीतात्मक एवं धार्मिक दृष्टिकोण से भी सामवेद का महत्वपूर्ण स्थान है।

कल्याण एवं परोपकार की महत्ता

यजुर्वेद में जीवन के उदात्तपक्ष का चित्रण भी बहुत सुन्दरता से किया गया है। संसार में मन एक बहुत बड़ी शक्ति है। यदि सबके मन में कल्याण व परोपकार की भावना आ जाये तो सभी प्रकार के कलह, द्वेष, ईर्ष्याभाव नष्ट होकर सर्वत्र शांति का साम्राज्य स्थापित हो जाए। मनोविज्ञान के मूलभूत गूढ़ तत्व इस सूक्त में बहुत काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत किये गये हैं :–

तुषारथिरश्वानिव मन्मनुष्यान्येनीयतऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठ तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।
.....(6)

इस प्रकार धार्मिक दृष्टिकोण से यजुर्वेद का अत्यधिक महत्व है। इसकी प्रार्थनायें आज भी प्रचलित हैं। इसमें यज्ञ अनुष्ठान सम्बन्धी सभी नियम, विधि–विधान व प्रार्थनायें संकलित हैं। औषधिशास्त्र व आयुर्वेद की दृष्टि से अथर्ववेद का महत्व अवर्णनीय है। इसमें शांति एवं अभ्युदय के साथ–साथ शाप व प्रायश्चित के सक्षम मंत्र भी हैं। अतः यह जन–साधारण का वेद है।

नैतिकता की महत्ता

उपनिषद् मनुष्य के उत्तर पक्ष स महत्व रखते हुए मनुष्य को अंधकार से प्रकाश की तरफ, अज्ञान से ज्ञान की तरफ व मृत्यु से अमृत्व की तरफ ले जाते हैं। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में उपनिषदों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। उपनिषद् यद्यपि कि आध्यात्मिक और रहस्यवादी हैं तथा उनमें नैतिकता का महत्व अनेक प्रकार से प्रतिपादित किया गया है। सत्य को तो ब्रह्म का आयतन अर्थात् निवासस्थान बतलाया गया है :– ''सत्यमायतनम्।''

मुण्डकोपनिषद् में भी कहा गया है कि – 'सत्यमेव जायते नानृतम्' अर्थात् सत्य ही विजयी होता है, अनृत नहीं। मनुष्य के लिए अपनी इन्द्रियों और मन को वश में रखना अत्यन्त आवश्यक माना गया है। जिसका मन और इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, वह अनुचित मार्ग में जाकर अवनति के गर्त में गिरता है।

कठोपनिषद् में कहा गया है कि जो विज्ञानवान्, संयमचित्त और सदा पवित्र रहने वाला है, वह उस पद को प्राप्त करता है, जहाँ से पुनः उत्पन्न नहीं होता –

यस्तुविज्ञानवान्भवति समनस्कः सदासुचिः।
सतु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते।।
...(7)

उपनिषदों में इस बात पर बहुत बल डाला गया है कि जब तक मनुष्य समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों और कर्तव्यों को पूरा नहीं करता तब तक वह किसी भी कार्य में सफल नहो हो पाता। इसी कारण कठोपनिषद् में नचिकेता ने यम से प्रथम वरदान में पितृपरितोष के बारे में ही मांगा –

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं भाभिवदेत्प्रतीत एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वणे।।
..(8)

आत्म संयम द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध

गुणवत्तपूर्ण जीवन के सन्दर्भ में भारतीय दर्शनों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। ऋषियों की ज्ञान उत्पत्ति का कारण 'योग' को माना जाता था जिसके अभ्यास से मनुष्य अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त करता था। आज कल योग का प्रचलित अर्थ है – 'आत्म संयम द्वारा चित्तवृत्ति का निरोध करना' – ''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।''

निर्वाण की प्राप्ति

कणाद् मुनि के अनुसार अज्ञान के कारण ही मनुष्य दुःख भोगता है दुःख से मुक्ति अज्ञान दूर करने से होती है तथा अज्ञान दूर करने के लिए 'आत्म–उत्थान या अभ्युदय' परमावश्यक है। धम ही अभ्युदय अर्थात् सांसारिक सुख और निःश्रेयस अर्थात् आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति करवाने में सहायक है। वेदों के अनुसार इस संसार में दुःख का कारण 'अविद्या' है, जिसे सम्यक कर्म ज्ञानादि को अपनाकर नष्ट किया जा सकता है, तभी मनुष्य

निर्वाण प्राप्त कर सकता है। निर्वाण वह अवस्था है – जहाँ पहुँच कर मनुष्य के सभी दुःख नष्ट हो जाते हैं। जैन दर्शन में अहिंसा पर अत्यधिक बल दिया गया है – 'अहिंसा परमो धर्मः।''

इस प्रकार से संस्कृत साहित्य का परमसाध्य मानव जाति का कल्याण ही रहा है। यज्ञ के निकट निवास करने वाले ब्रह्मर्षियों एवं महर्षियों के अनुभूत ज्ञान एवं पारस्परिक वार्तालाप से जिस ज्ञान के वेल की शुरूआत हुई, वह गुरूकुल पद्धति से होती हुई नालन्दा और तक्षशिला विश्वविद्यालय के रूप में विकसित होकर पूरी दुनिया में विद्या के समृद्ध केन्द्र के रूप में भारत में उस विशाल विरासत का संदेश देने में सफल रहते हुए भारत का गौरवीयकरण किया है।

निश्कर्श

इष्ट प्राप्ति तथा अनिष्ट निवारण के अलौकिक उपाय के अवबोधक, कल्याण एवं परोपकार की महत्ता के अवबोधक, नैतिकता के प्रदायक तथा आत्म संयम द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध करके मानव उत्थान का मार्ग प्रशस्त करने वाला संस्कृत वाङ्मय ह। अतः विकास क्रम में संस्कृत साहित्य की विषय परिधि में आने वाले शास्त्रों, ग्रन्थों, कृतियों, स्मृतियों एवं रचनाओं का सारतः साध्य मानव जाति का उत्थान एवं कल्याण ही रहा है। यद्यपि दृष्टिकोण विविध है तथापि लक्ष्य मानव जाति का उद्धार ही रहा है जो मोक्ष–मुक्ति निर्वाण, कैवल्य जैसे शब्दों से अभिज्ञात है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

ऋग्वेद– 10.34.13
ऋग्वेद– 10.14.08
ऋग्वेद– 10.85.47
ऋग्वेद– 10.90.12
ऋग्वेद– 10.85.46
वाजसनेमी संहिता– 34.6
कठोपनिषद् – 1.3.8
कठोपनिषद् – 1.1.10